# विश्वविद्यालयों के 'धंधेबाज़ी' की नयी तैयारी

**-लेखक रोमिला थापर, अनु-आशुतोष उपाध्याय**

*अगर प्रस्तावित बदलाव लागू हुए तो किस किस्म की समस्याएं खड़ी होंगी उनकी यह बानगी भर है। इस भविष्यवाणी के लिये ज़्यादा दूरदृष्टि की जरूरत नहीं कि बदलावों की गाज हमारी विश्वविद्यालयी व्यवस्था में किस-किस पर गिरेगी।*

*घटिया शिक्षा पाए और नौकरी के इच्छुक मगर अयोग्य ठहराए गये नौजवानों की बड़ी तादाद एक स्वस्थ समाज की तस्वीर नहीं पेश करती। न विज्ञान और न ही समाज विज्ञान 40 विश्वविद्यालयों में महज एक जैसी सूचना के बतौर नहीं पाए जा सकते।*

*हर विषय के लिए सोच-विचार, सवाल और बहस-मुबाहिसे की दरकार होती है, क्योंकि प्रत्येक विषय की अपनी बौद्धिक विषयवस्तु होती है, जो उसकी समझ के निर्माण के लिये आवश्यक है।*

*इस बहस को ऊपर से निर्धारित नहीं किया जा सकता। एक सिलेबस जिसे 'ऊपर से' थोपा गया हो और जिस पर शिक्षकों ने विचार न किया हो, रटंत सूचना बनकर रह जाता है।*

**विश्वविद्यालयों के सिलेबस का प्रस्तावित मानकीकरण शिक्षा की गुणवत्ता को रसातल में गिरा डालेगा।**

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने कुछ दिन पहले घोषणा की कि वह केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की संरचना और तौर-तरीकों में बदलाव लाने जा रहा है।

देश में फ़िल्वक़्त 40 के करीब विश्वविद्यालय हैं। प्रस्तावित यूनिवर्सिटी एक्ट के जरिये इन बदलावों को सार्वजनिक किया गया। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के अकादमिकों ने बड़ी तादाद में सुझावों की जांच पड़ताल की।

उन्होंने प्रस्तावित बदलावों का गहराई से अध्ययन किया, क्योंकि प्रस्तावित बदलाव अगर लागू हुए तो ये कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर की उच्च शिक्षा को व्यापक रूप से प्रभावित करेंगे।

छः महीने के गहन विचार मंथन के बाद उन्होंने संयुक्त रूप से एक दस्तावेज जारी किया-'भारतीय विश्वविद्यालयों का क्या करें? चिंतित शिक्षकों के विचार'

दस्तावेज बताता है कि क्यों उन्होंने अकादमिक वजहों से ज़्यादातर प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाया। यह दस्तावेज फ़ेसबुक पर उपलब्ध है और कई उपयोगी पोस्टों में प्रकाशित हो चुके हैं। बड़ी संख्या में शिक्षकों की ओर से जारी किया गया यह महत्वपूर्ण वक्तव्य है, जिसमें प्रस्तावों पर मांगी गयी उनकी प्रतिक्रियाएं शामिल हैं।

उम्मीद की जानी चाहिये कि इन प्रतिक्रियाओं पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और स्नातक व स्नातकोत्तर शिक्षा से जुड़े अन्य तमाम संगठन व्यापक रूप से विचार करेंगे।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि मौजूदा या पिछली सरकारों ने शिक्षा को पर्याप्त गंभीरता से नहीं लिया। पहले ही शर्मनाक ढंग से कम शिक्षा बजट को अब 3 फ़ीसदी की अतिसूक्ष्म मात्रा तक घटा दिया गया है।

इसके बावजूद एक धुंधली सी उम्मीद बंधी हुई है कि विकास की सीढियां चढी जा सकती हैं। विकास के लिये ठीक से पढे-लिखे लोग चाहिए अन्यथा यह कहीं नहीं ले जाता। क्या राजनेताओं को शिक्षित नागरिकों से डर लगता है?

**कायाकल्प की जगह सुधार**

शिक्षा को सुधारने के लिये सरकार गलत सिरे से शुरूआत करती दिखाई पड़ती है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और आईआईटी, आईआईएम जैसी संस्थाओं की ज़्यादा संख्या की वकालत करते हुए

वह इस तरह उच्च स्तर पर नाटकीय परिवर्तन लाने की योजना बना रही है।

जैसा कि अक्सर कहा जाता है कि मौजूदा संस्थाओं को बेहतर बनाने पर ज़ोर दिया जाना चाहिये। तथा शिक्षा का दरोमदार स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में निहित है। यूपीए-2 सरकार की ओर से पेश किया गया विश्वविद्यालयों की संख्या बढाने का प्रस्ताव मौजूदा सरकार को भी जंच गया लगता है।

मगर भारत में शिक्षा व्यवस्था में गंभीर सुधार के लिये प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बुनियाद को मजबूत करने की जरूरत है ऐसा इनकी गुणवत्ता को व्यवस्थित और तार्किक ढंग से सुधार कर ही संभव है।

यह बात पाठ्यक्रम पर भी उतनी ही गहराई से लागू होती है जितनी कि सुविधाओं पर।

बड़े बजट से स्कूलों की संख्या बढा पाना संभव है और बेशक इनकी बेहद जरूरत भी है। लेकिन संख्या बढाना ही पर्याप्त नहीं होता। स्कूल की स्थापना ऐसी जगह होनी चाहिए कि इस पर ऊंची जातियों और पैसे वालों का दबदबा कायम न हो नहीं तो समाजिक और आर्थिक रूप से कमज़ोर लोग शिक्षा से वंचित रह जायेंगे।

स्कूल पर्याप्त रूप से साधन सम्पन्न भी होने चाहिए। शिक्षक ठीक से प्रशिक्षित हों और शिक्षा के लाभ स्पष्ट दिखाई पड़ने चाहिए।

इस काम को उच्च शिक्षा की तरह बेहद संजीदगी से किए जाने की जरूरत है। स्कूली शिक्षा अच्छी न हों तो उच्च शिक्षा संस्थान विकलांग हो जाते हैं। घटिया स्कूली शिक्षा प्राप्त छात्र उच्च शिक्षा हासिल करने में लडखडाते हैं और इसके लिये खर्च की गयी भारी-भरकम राशि बेकार चली जाती है।

शिक्षा के कई लक्ष्य है। इंटरनेट की तरह यह सूचनाएं मुहैया कराती है। लेकिन फ़र्क यह है कि शिक्षा से विश्वसनीय सूचनाएं मिलती हैं। साथ ही यह तार्किक और विश्लेषणात्मक ढंग से विचार करना सिखाती हैं।

अगर ज्ञान को आगे बढाना है तो मौजूदा ज्ञान पर सवाल खड़े होने चाहिए। चाहे वह विज्ञान हो या फ़िर समाज विज्ञान या मानविकी। ऐसा आलोचनात्मक निरीक्षण शिक्षा के किसी भी क्षेत्र का महत्वपूर्ण बिंदु है।

संयोगवश एक छात्र को नौकरी के लिये सबसे अच्छा प्रशिक्षण भी शिक्षा ही देती है। बच्चे की कल्पनाशक्ति के विकास के लिये मिथकों को गढना जरूरी है किन्तु शिक्षा और विद्वता के साथ इसका घालमेल ठीक नहीं।

स्कूली शिक्षा को उच्च शिक्षा के साथ जोड़ने का सम्बन्ध प्रस्तावित यूनिवर्सिटी एक्ट के कुछ सुझावों पर दी गयी प्रतिक्रियाओं से भी है। सुझावों में सिलेबस के मानकीकरण और केन्द्रीकरण को शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने का एक जरिया बताया गया है।

**दस्तावेज बताता है कि क्यों उन्होंने अकादमिक वजहों से ज़्यादातर प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाया। यह दस्तावेज फ़ेसबुक पर उपलब्ध है और कई उपयोगी पोस्टों में प्रकाशित हो चुके हैं। बड़ी संख्या में शिक्षकों की ओर से जारी किया गया यह महत्वपूर्ण वक्तव्य है, जिसमें प्रस्तावों पर मांगी गयी उनकी प्रतिक्रियाएं शामिल हैं। उम्मीद की जानी चाहिये कि इन प्रतिक्रियाओं पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और स्नातक व स्नातकोत्तर शिक्षा से जुड़े अन्य तमाम संगठन व्यापक रूप से विचार करेंगे।**

यह भी कहा गया है कि शिक्षकों और छात्रों की केन्द्रीकृत भर्ती से उन्हें गतिशीलन बनाया जा सकेगा। क्या सभी 40 विश्वविद्यालयों के सभी विषयों के लिये समूचे सिलेबस का केन्द्रीकरण और मानकीकरण संभव है? यह एक भीमकाय और गैर-जरूरी कवायद और हो सकता है कहीं विपदा ही साबित न हो जाए।

इसके बाद पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं के लिए लगभग दोगुने बजट की जरूरत पड़ेगी। अन्यथा शिक्षा कुछ वक्ताओं को रटने तक सीमित नहीं रह जाएगी?

सिलेबस के मानकीकरण के सिलसिले में कमतर संस्थाओं को ऊपर उठाने की खातिर अच्छी संस्थाओं को अपना स्तर गिराना पड़ेगा। शिक्षा की गुणवत्ता का मानक न्यूनतम समापवर्तक हो जएगा।

ऊंचा स्तर विविधता और ज्ञान के सतत व विश्वसनीय उन्नयन की मांग करता है। बौद्धिक जिज्ञासा के विकास के लिये यह जरूरी है। मानकीकरण और केन्द्रीकरण के बाद विश्वविद्यालय शिक्षा की दुकानों और कोचिंग स्कूलों में बदल जाएंगे।

संयुक्त प्रवेश परीक्षा के परिणामस्वरूप महानगर के विश्वविद्यालयों की ओर भीड़ बढने लगेगी। क्योंकि अच्छी नौकरियों के लिये ये बेहतर प्रवेश द्वार हैं। ऐसे में आरक्षण की व्यवस्था और कोटे को कैसे लागू किया जाएगा? क्या संख्याओं को लगातार बदलते रहना होगा?

दूसरे बड़ी समस्या भाषा की होगी। आज ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाएं शिक्षा का प्रभावी माध्यम है। खास तौर पर स्नातक स्तर पर तो क्या शिक्षकों व छात्रों को एक जगह (जैसे पंजाब) से दूसरी जगह (जैसे केरल) यह मांग करते हुए भेजा जाएगा कि उन्हें नई जगह में जो भी भाषा चलाई जा रही हो उसका इस्तेमाल करना ही होगा?

या विरोध को दबाने के हथियार के तौर पर शिक्षकों व छात्रों को दण्डस्वरूप सथानांतरित किया जाएगा? द्विभाषा-एक क्षेत्रीय और एक सार्विक भाषा-एक हल हो सकता है, बशर्ते सार्विक भाषा पर सबकी सहमति हो।

**गरीब और अमीर के लिये स्कूल**

अगर प्रस्तावित बदलाव लागू हुए तो किस किस्म की समस्याएं खड़ी होंगी उनकी यह बानगी भर है। इस भविष्यवाणी के लिये ज़्यादा दूरदृष्टि की जरूरत नहीं कि बदलावों की गाज हमारी विश्वविद्यालयी व्यवस्था में किस-किस पर गिरेगी।

घटिया शिक्षा पाए और नौकरी के इच्छुक मगर अयोग्य ठहराए गये नौजवानों की बड़ी तादात एक स्वस्थ समाज की तस्वीर नहीं पेश करती। न विज्ञान और न ही समाज विज्ञान 40 विश्वविद्यालयों में महज एक जैसी सूचना के बतौर नहीं पाए जा सकते।

हर विषय के लिये सोच-विचार, सवाल और बहस-मुबाहिसे की दरकार होती है, क्योंकि प्रत्येक विषय की अपनी बौद्धिक विषयवस्तु होती है, जो उसकी समझ की निर्माण के लिये आवश्यक है।

इस बहस को ऊपर से निर्धारित नहीं किया जा सकता। एक सिलेबस जिसे 'ऊपर से' थोपा गया हो और जिस पर शिक्षकों ने विचार न किया हो, रटंत सूचना बनकर रह जाता है।

अगर सरकारी विश्वविद्यालय घटिया शिक्षा देंगे तो अच्छी शिक्षा के लिये लोग प्राइवेट विश्वविद्यालयों की ओर जाएंगे क्योंकि ये इस तरह के प्रतिबंध नहीं लगाये। लेकिन प्राइवेट विश्वविद्यालय अमूमन ज़्यादातर छात्रों की हैसियत से बाहर हैं। नतीजतन सरकारी विश्वविद्यालय गरीबों के शिक्षा संस्थान बनकर रह जाएंगे, जैसा कि सरकारी स्कूलों में दिखाई देता है।

एक बड़ी समस्या विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को खत्म हो जाने की होगी, जैसा कि दिल्ली के अकादमिकों ने अपने प्रत्युत्तर में इंगित किया है। किसी विश्वविद्यालय की संभावनाएं एक जैसी स्वायत्त संस्था के रूप में बने रहने में निहित है जो उच्च स्तर को बनाए रखने व नई पहल की जिम्मेदारी ले।

सार्वजनिक विश्वविद्यालय व्यवस्था की गुणवत्ता और इसकी निरंतरता किसी भी आधुनिक समाज के लिये निर्णायक होती है। प्राइवेट विश्वविद्यालय, चाहे कितने भी अच्छे क्यों न हों, हर किसी को उच्च शिक्षा उपलब्ध नहीं करा सकते। प्रस्तावित बदलाव शैक्षिक संस्था के रूप में विश्वविद्यालय के कार्यभार और भूमिका के कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण पहलू को नष्ट कर डालेंगे।

## तुर्की-ब-तुर्की / हकीकत जबान पर आ ही गयी

**''नेताओं को लोग चोर समझते हैं, सरकार को टैक्स देने के बजाय धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं को दान देना बेहतर समझते हैं।'' (पेहवा की एक जनसभा में हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर ने कहा)''**

**हमारा कहना है-**

**एक साल के अपने शासनकाल में खट्टर साहब ने पहली बार कोई सही बात कही है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार के चोर नेताओं से मुक्ति पाने के चक्कर में जनता खट्टर की भगवा पार्टी को लाई तो ये महाचोर निकले। विकल्पहीनता की स्थिती में जनता एक चोर गिरोह के चंगुल से छूट कर दूसरे महाचोर गिरोह के चंगुल में जा फ़सती है।**

**जनता इन्हें चोर क्यों न समझे जब इनका एक सूत्री कार्यक्रम ही चोरी करना है। बल्कि चोर समझ कर जनता इनके प्रति उदारता बरत रही है। इनके कर्मों को देखा जाय तो इन्हें डाकू कहा जाना चाहिये; क्योंकि चोर तो चुपके से, आंख बचा कर चोरी करता है जबकि नेता जो सत्ता के बल से जनता का माल छीन कर हड़प रहे हैं।**

**ढाई से तीन रुपये प्रति यूनिट की दर से बिजली खरीद कर आठ रुपये प्रति यूनिट के भाव इसे बेच कर भी घाटा कमाने वाली सरकार के नेताओं को जनता चोर-डाकू नहीं समझे तो और क्या समझे खट्टर जी? एक बिजली ही नहीं, सरकार का प्रत्येक उपक्रम, चाहे वह परिवहन विभाग हो, चीनी मिल हों, पर्यटन विभाग हों या कोई और धंधा हो, सब में मुनाफ़े की बजाय घाटा सरकारी डकैती की वजह से नहीं तो किस वजह से है?**

**किसी भी सरकारी निर्माण कार्य-सड़क, भवन, नहर आदि के पीछे जनहित स्वार्थ की पूर्ति पहले देखते हैं। सौ रुपये की लागत से होनेवाले काम पर हज़ार रुपये खर्च दिखाने में इन्हें कतई कोई परेशानी नहीं होती। सरकार की इन्हीं कुटिल हरकतों को देखते हुए जनता का प्रयास रहता है कि चोरों-डाकुओं की सरकार को एक पैसा भी किसी रूप में न दिया जाय। लेकिन सरकार ने अपनी वसूली के रास्ते इतने पुख्ता बना रखे हैं कि भिखारी तक से भी वसूली करके छोड़ती है। इसी वसूली के दम पर सरकार के रूप में बैठे डाकू गिरोह की जायदादें दिन दूणी रात चौगुणी बढती जाती हैं।**